१७ अन्तर्मन की ग्रंथियाँ खोलें*!

☐ आचार्य श्री नानेश

सूर्य स्वयं प्रकाशमान होता है, उसे अपने प्रकाश के लिये किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं होती। फिर जिस आत्म तत्त्व को सूर्य से भी अधिक तेजस्वी माना गया है, आखिर उसी की चेतना इतनी चंचल और अस्थिर क्यों बन जाती है ?

निज स्वरूप को विस्मृत कर देने के कारण ही चेतना शक्ति संज्ञाहीनता से दुर्बल हो जाती है। उसका कितना अमित सामर्थ्य है—उस को भी वह भूल जाती है। वह क्यों भूल जाती है ? कारण, वह अपने मूल से उखड़ कर अपनी सीमाओं और मर्यादाओं से बाहर भटक जाती है और उन तत्त्वों के वशीभूत हो जाती है, जिन तत्त्वों पर उसे शासन करना चाहिये। यह परतन्त्रता आत्म-विस्मृति से अधिकाधिक जटिल होती चली जाती है। जितनी अधिक परतंत्रता, उतनी ही अधिक ग्रंथियाँ मन को जकड़ती रहती हैं। जितनी अधिक ग्रंथियाँ, उतना ही मन बंधनग्रस्त होता चला जाता है। इसलिए दृष्टि का विकास करना है और चेतना को सुलझाना है तो अन्तर्मन की सारी ग्रंथियाँ खोल लीजिये।

विषमता की प्रतीक स्वरूप विभिन्न ग्रंथियाँ मानव-मन में मजबूती से बंध जाती हैं और विचारों के सहज प्रवाह को जकड़ लेती हैं। जब तक इन ग्रंथियों को खोल न सकें, तब तक आन्तरिक विषमता समाप्त नहीं होती और आन्तरिक विषमता रहेगी तो बाह्य विषमता के नानाविध रूप फूलते-फलते रहेंगे एवं दुःख-द्वन्द्वों की ज्वाला जलती रहेगी। व्यक्ति-व्यक्ति की इन आन्तरिक ग्रंथियों को खोले बिना चाहे हजार-हजार प्रयत्न किये जायं या आन्दोलन चलाए जाएं, बाहर की राजनैतिक, आर्थिक अथवा अन्य समस्याएं सन्तोषजनक रीति से सुलझाई नहीं जा सकेंगी। मन सुलझ जाय तो फिर वाणी और कर्म के सुलझ जाने में अधिक विलम्ब नहीं लगेगा।

*श्री शान्तिचन्द्र मेहता द्वारा सम्पादित प्रवचन।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अधिकांश अवसरों पर यही विडम्बना सामने आई है कि आन्तरिक उलझनों के कारणों को समझे बिना बाहर की समस्याओं के समाधान खोजने में विफलता का सामना करना पड़ता है। इतिहास साक्षी है कि इस दिशा में कैसे-कैसे प्रयत्नों के साथ क्या-क्या परिणाम सामने आये हैं? सत्य तो यह है कि ये प्रयत्न समता की अपेक्षा विषमता के मार्ग पर ही अधिक चले और असफल होते रहे। इन्हीं उलझनों के कारण मानव जाति के बीच अशान्ति की ज्वाला भी धूँ-धूँ करके जलती रही है। आध्यात्मिकता के अनुशासन के बिना भौतिक विज्ञान के विकास ने भी आज के मानव को आत्म-विस्मृत बना दिया है। इस भावना शून्य भौतिक विकास ने मानव मन में उद्दंड महत्त्वाकांक्षाओं को जन्म दिया है तथा आत्मा की आन्तरिकता पर आवरणों की अधिक परतें चढ़ा दी हैं। इस कारण मनुष्य अपनी अन्तरात्मा के स्वरूप से बाहर ही बाहर भटकते रहने को विवश हो गया है। विषमता सभी सीमाएं तोड़ रही है—यह स्थिति समता दर्शन के लिए प्रबल प्रेरक मानी जानी चाहिए।

बस, मूल की भूल को पकड़ लें :

आदि युग में प्रधानतया इस चेतना के दो परिणाम आत्म-पर्यायों की दृष्टि से सामने आये हैं। एक पशु जगत् का तो दूसरा मनुष्य जगत का। पशु जगत् अब भी उसी पाशविक दशा में है जबकि मानव जगत् ने कई दिशाओं में उन्नति की है। आकाश के ग्रहों-उपग्रहों को छू लेने के उसके प्रयास उसकी चेतना शक्ति के विकास के प्रतिफल के रूप में देखे जा सकते हैं किन्तु वस्तुत: उसकी ऐसी चेतना शक्ति एवं उसकी विकास-गति पर-तत्त्वों के सहारे चल रही है—स्वाश्रयी या स्वतन्त्र नहीं है। चेतना शक्ति के इस प्रकार के विकास ने अपनी ही सार्वभौम सत्ता को जड़ तत्त्व के अधीन गिरवी रख दी है। अधिकांश मानव मस्तिष्क जड़ तत्त्वों की अधीनता में—उनकी एक छत्र सत्ता में अपने आपको आरोपित करके चल रहे हैं। यही तथ्य है जिससें समस्याएं दिन-प्रति-दिन जटिलतर बनती जा रही हैं। यद्यपि अलग-अलग स्थलों पर समता भाव के सदृश समाजवाद, साम्यवाद आदि विचार सामने आये हैं जो अधिकतम जनता के अधिकतम सुख को प्रेरित करने की बात कहते हैं किन्तु इन विचारों की पहुँच भी भीतर में नहीं है। बिना आत्मावलोकन किये तथा भीतर की ग्रंथियों को खोले—बाहर की समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। समता दर्शन की दृष्टि से यह सब मूल की भूल को पकड़ पाने के कारण दुरुह हो रहा है।

वर्तमान संसार में अधिकांशत: जो कुछ हो रहा है, वह बाहर ही बाहर हो रहा है। उसमें भीतर की खोज नहीं है। जहाँ तक मैं सोचता हूँ, मेरी दृष्टि में ऐसे सारे प्रयत्न मूल में भूल के साथ हो रहे हैं। मूल को छोड़कर यदि केवल शाखा-प्रशाखाओं को थामकर रखा जाय तो वैसी पकड भ्रामक भी होगी तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

निष्फल भी। इसे ही मूल की भूल कहते हैं क्योंकि मूल पर पकड़ न रहने से आगे की गति में भूलें ही भूलें होती रहती हैं तथा धीरे-धीरे आत्म विस्मृति के कारण उन्हें परख लेने की क्षमता भी क्षीण होती चली जाती है। इसलिये प्रारम्भ से ही मूल की भूलों को नहीं पकड़ेंगे और उन्हें नहीं सुधारेंगे तो सिर्फ टहनियों और पत्तों को संवारने से पेड़ को हरा-भरा नहीं रख पायेंगे।

इस मूल की भूल को ठीक से समझ लेने की आवश्यकता है। वस्तुतः आज लक्ष्य की ही भ्रान्ति है। आज अधिकांश लोगों ने जो मुख्य लक्ष्य बना रखा है वह शायद यह है कि अधिकाधिक सत्ता और सम्पत्ति पर हमारा ही आधिपत्य स्थापित हो। ममताभरी ऐसी लालसा उनके मन में तेजी से उमड़ती-घुमड़ती है। सत्ता और सम्पत्ति—ये बाहरी तत्त्व हैं जो आन्तरिक शक्ति को उजागर बनाने में बाधा रूप ही हैं। जब चेतना बाधाओं को झोली में समेटती जाय तो यह मूल की भूल हुई कि नहीं? बाधाओं को हटाने के लिये गति दी जाती है, उन्हें समेटने के लिए नहीं। उससे तो दुर्गति होती है। अगर मूल की भूल पकड़लें कि ममता-मन को बिगाड़ती है और समता सुधारती है तो ममता के तानोबानों में नहीं उलझेंगे। आत्माभिमुखी बनकर ही मनुष्य अपने बाहरी जगत् के कर्त्तव्यों का भी सही निर्धारण कर सकता है क्योंकि उस निर्धारण में संसार के सभी प्राणियों के प्रति समता-भाव का अस्तित्व होता है। मूल में समता रहेगी तो मूल को देखकर बाद की किसी भूल को सुधारना सरल हो जायगा।

शक्ति के नियंत्रण से ही उसका सदुपयोग :

चैतन्य प्राणियों में शक्ति का प्रवाह तो निरन्तर बह रहा है जिसमें दोनों प्रकार की शक्तियाँ–भौतिक एवं आध्यात्मिक सम्मिलित हैं। दोनों प्रकार की इन प्रवहमान शक्तियों को बांधकर जीवन विकास की दिशा में उनका पूरा सदुपयोग किया जा सकता है। वर्षा का खुला पानी चारों ओर बिखर कर बरबाद हो जाता है मगर यदि उसी पानी को—नदियों या नालों को रोक कर बांध लें और बांध बनालें तो उस बंधे हुए पानी का कई रीतियों से मानव समाज अपने लिए सदुपयोग कर सकता है। शक्ति बिखर जाती है तो टूट जाती है और शक्ति बंध जाती है तो सुख का साधन हो जाती है।

यहाँ प्रश्न शक्ति के नियंत्रण एवं उसके सदुपयोग का ही है ताकि वह शक्ति सच्चा विकास सम्पादित करा सके। चेतना–शक्ति के लिये भी यही प्रश्न है। पर–तत्त्वों के पीछे भागते रहने से तथा विषमताओं में ग्रस्त हो जाने से चेतना शक्ति लुंजपुंज हो रही है और बिखर रही है—इस कारण प्रभावहीन हो रही है—निरुपयोगी बन रही है। मूल की भूल को पकड़ कर यदि चेतना शक्ति

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सच्चे अर्थ में योग्य द्रष्टा बन जाय तो उसकी शक्ति नियंत्रित भी हो जायेगी और एकरूप भी बन जावेगी। तब उसकी प्रभाविकता एवं उपयोगिता अपरिमित हो जायगी। अनियंत्रित मन भटकाव में हजार जगहों पर उलझता है तो हजार तरह को गांठें बांध लेता है। यदि दृष्टि समर्थ बन जाय तो मन का नियन्त्रण भी सहज हो जायेगा क्योंकि समता के समागम से समर्थ दृष्टि द्रष्टा को भी योग्य बना देगी। वह द्रष्टा तब जड़ तत्त्वों की अधीनता छोड़ देगा। और स्वयं उनका भी और निजका भी कुशल नियंत्रक बन जायगा। मानव मन बदला तो समझिये कि व्यक्ति-व्यक्ति में यह शुभ परिवर्तन चल निकलेगा जो समाज, राष्ट्र एवं विश्व तक की परिस्थितियों को समता के ढांचे में ढालकर सबके लिये उन्हें सुखकर एवं हितकर बना देगा।

केवल एकसूत्री कार्यक्रम–समता दर्शन :

इस प्रकार के सुखद परिवर्तन की दशा में जो बाह्य समस्याएँ पहले जटिल दिखाई दे रही थीं, वे आसान हो जायेंगी। जो विकृत दृष्टि पहले अपने स्वार्थ ही देखती थी, वह सम बन कर अपने आत्म स्वरूप को देखेगी तो बाहर परहित को ही प्रमुखता देगी। ज्यों-ज्यों हृदय की गहराइयों में समता का उत्कर्ष बढ़ता जायगा, लोकोपकार के लिये अपने सर्वस्व तक की बलि कर देने में भी कोई हिचक नहीं होगी।

समता–दर्शन के केवल एक-सूत्री कार्यक्रम के आधार पर न सिर्फ व्यक्ति के अन्तर्मन और जीवन में जागृति की ज्योति फैलेगी बल्कि सामाजिक, राष्ट्रीय एवं विश्वजनीन जीवन में भी क्रान्तिकारी सुखद परिवर्तन लाये जा सकेंगे। 'चेतन पर जड़ को हावी न होने दें'—यह मूल मंत्र है, फिर मोह का कोई व्यवधान नहीं रहेगा। समता दर्शन का प्रकाश सभी प्रकार के अंधकार को नष्ट कर देगा।

जीवन में समता के विकास की आधारशिला बनाइये। श्रेष्ठ संस्कारों को–जो इतने प्रगाढ़ हों कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पल्लवित-पुष्पित होते हुए इस तरह श्री वृद्धि करते जांय कि सांसारिक जीवन का क्रम ही अबाध रूप से समतामय बन जाय। ऐसी सभ्यता और संस्कृति का वातावरण छा जाय जो मानव-जाति ही नहीं समस्त प्राणी समाज के साथ सहानुभूति एवं सहयोग की सक्रियता को स्थायी बनादे।

विश्व-दर्शन तभी सार्थक है जब योग्य द्रष्टा अपनी समर्थ दृष्टि के माध्यम से सम्पूर्ण दृश्य को समतामय बना सके। यथावत् स्वरूप दर्शन से ही समता का स्वरूप प्रतिभासित हो सकेगा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल समस्या है दृष्टि विकास की। यह विकास समता दर्शन की गूढ़ता में रंग कर ही साधा जा सकेगा। दृष्टि इस रूप में विकसित होगी तभी सामर्थ्य ग्रहण करेगी और अपने दृष्टा को स्वरूप-दर्शन की योग्यता प्रदान करेगी। मूल रूप में ममता से हटने पर ही दृष्टि विकास का कार्यारंभ हो सकेगा। स्वरूप दर्शन से परिवर्तन की प्रेरणा मिलती है। एक दर्पण को इतना स्वच्छ होना चाहिये कि उसमें कोई भी आकृति स्पष्टता से प्रतिबिम्बित हो सके। किन्तु कोई दर्पण ऐसा है या नहीं—उसे देखने से ही ज्ञात होगा। यथावत देखने से जब मैला रूप दिखाई देगा तो उसे धो-पोंछ कर साफ बना लेने की प्रेरणा भी फूटेगी। विकासोन्मुख होने की पहली सीढ़ी स्वरूप-दर्शन है—चाहे वह निजात्मा का हो या विश्व का। स्वरूप दर्शन से स्वरूप-संशोधन की ओर चरण अवश्य बढ़ते हैं और समुच्चय में समता दर्शन का यही सुफल है।

• • •

कर्मन की रेखा न्यारी रे

[राग मांड]

कर्मन की रेखा न्यारी रे, विधि ना टारी नांहि टरै।

रावण तीन खण्ड को राजा, छिन में नरक पड़ै।
छप्पन कोट परिवार कृष्ण के, वन में जाय मरे ॥१॥

हनुमान की मात अन्जना, वन-वन रुदन करै।
भरत बाहुबलि दोऊ भाई, कैसा युद्ध करै ॥२॥

राम अरु लक्ष्मण दोनों भाई, सिय के संग वन में फिरै।
सीता महासती पतिव्रता, जलती अग्नि परे ॥३॥

पांडव महाबली से योद्धा, तिनकी त्रिया को हरे।
कृष्ण रुक्मणी के सुत प्रद्युम्न, जनमत देव हरै ॥४॥

को लग कथनी कीजै इनकी, लिखतां ग्रन्थ भरै।
धर्म सहित ये करम कौनसा, 'बुधजन' यों उचरे ॥५॥

—बुधजन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org